सन्यासी सेई, माणिनि सुखु सरूप जो,
सामी जिनि जी साध-संगि, ममत मिटी वेई,
पियनि पियालो पिरेम जो, तनु मनु धनु डेई,
दिरिष्टि खुली पेई, सहजे गुल गुलाब जां.

सामी साहब कहते हैं कि संन्यासी वे हैं, जो स्वरूप (स्वस्वरूप, अंतरात्मा, ईश्वर) के आनंद का अनुभव करते हैं। साधु-संतों की संगत में आने से उन मनुष्यों का ममत्व-भाव मिट गया है। ऐसे सन्यासी तन, मन और धन देकर प्रेम का प्याला पीते हैं। उनकी दृष्टि ऐसे खुल गयी है, जैसे गुलाब की कली खिलकर फूल बन जाती है।

'संन्यास' का अर्थ है सम्यक् न्यास। 'सम्यक्' का अर्थ है योग्य रीति और न्यास का अर्थ है त्याग। अर्थात् उपाधियों का योग्य रीति से किया गया त्याग ही 'संन्यास' है। संन्यासी वृत्ति यानी आसक्ति न रखने की वृत्ति। संन्यास का सामान्य अर्थ है सांसारिक बंधनों से मुक्त हो जाना । सन्यास जीवन का चौथा आश्रम है। जिसमें सभी के संग का त्याग करना पड़ता है। 'मनुस्मृति' भी यही बात कहती है। गीता में निष्काम भाव से किये गये कर्मों को 'संन्यास' कहा गया है। सारांश, संन्यासी के लिए त्याग, आसक्ति से मुक्त होना आवश्यक है। संन्यासी को कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है। उदा. कमंडलु और दंड धारण करना, मौन धारण करना, सत्य वचन बोलना ॐकार का उच्चारण करना आदि । संन्यासी को चारों वर्णों के लोगों के पास जाकर भिक्षा लेनी/माँगनी पड़ती है। जो मिले, उसी में संतोष मान लेना पड़ता है। संन्यासियों के चार भेद हैं- हंस, परमहंस, बहुदक और कुटीचक्र। संक्षेप में कहा जा सकता है कि संन्यास त्याग पर आधारित होता है। शारीरिक दृष्टि से सन्यास की तुलना में इच्छाओं के त्याग रूपी मानसिक संन्यास को सच्चा संन्यास माना गया है।

महाकवि सामी के विचारानुसार वे मनुष्य सच्चे संन्यासी कहे जा सकते हैं, जो अपने मन-मंदिर में ही परमात्मा के दर्शन कर सच्चा सुख-संतोष पाते हैं। इसके लिए उन्हें घर-संसार का त्याग करने की आवश्यकता नहीं होती। ऐसे मनुष्य भीतर से संन्यासी होते हैं, मन से त्यागी होते हैं। सत्संगति के कारण उनके मोह, ममता, आसक्ति आदि भाव नष्ट हो चुके होते हैं। भौतिक जगत में रहते हुए भी वे स्वयं तो प्रेम का प्याला पीते हैं और दूसरों को पिलाते रहते हैं। अंतर्ज्ञान होने के कारण वे प्रभु के दर्शन करने के योग्य बन जाते हैं। ऐसे ही मनुष्य सच्चे संन्यासी हैं।

■